तृतीय अध्याय

" 'परिशिष्ट' उपन्यास में चित्रित दलित जीवन"

तृतीय अध्याय

" 'परिशिष्ट' उपन्यास में चित्रित दलित जीवन"

3.1 दलित से तात्पर्य :

'शिक्षक हिंदी शब्दकोश' में दलित शब्द का अर्थ है- "1 कुचला हुआ, दबाया हुआ 2 नष्ट किया हुआ।"[1] इसी अर्थ की पुष्टी 'नालंदा विशाल शब्द सागर' में हुई है - "1 मसला, रौंदा या कुचला हुआ 2 नष्ट किया हुआ।"[2] 'डायमंड हिंदी शब्दकोश' में दलित शब्द का अर्थ है- "मीड़ा हुआ; रौंदा हुआ, कुचला हुआ; खंडित; दबाया हुआ।"[3] तो 'हिंदी शब्दसागर' में अर्थ विस्तृत शब्दों में दिया है – "मीड़ा हुआ।मसला हुआ। मदित।2 रौंदा हुआ। कुचला हुआ। खंडित। टुकडे - टुकडे किया हुआ।4 विनिष्ट किया हुआ। 5 जो दबा रखा गया हो। दबाया हुआ।"[4] 'मानक हिंदी कोश' में अर्थ दिया है- 1 जिसका दलन हुआ हो, 2 जो कुचला, दला, मसला या रौंदा गया हो। 3 टुकडे - टुकडे किया हुआ। चूणित।4 जो दब गया हो अथवा जिसे पनपने या बढ़ने न दिया हो। हीन अवस्था में पड़ा हुआ।5 ध्वस्त या नष्ट किया हुआ।"[5] 'मराठी व्युत्पत्ति कोश' में दलित शब्द का अर्थ है - "भरडलेले, तुडवलेले, Ground broken to pieces, pounded depressed."[6] तो 'आदर्श मराठी शब्दकोश' में यह अर्थ है - दळलेले, भरडलेले 2 फोडलेले, तुकडे केलेले, मोडलेले 3 चेपलेले, दाबलेले, हलकी जात, वर्ण।"[7]

---

1. सं.हरदेव बाहरी - शिक्षक हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ - 181
2. सं.श्री नवलजी - नालंदा विशाल शब्दसागर, पृष्ठ - 568
3. सं.डॉ गिरिराज शरण अग्रवाल, डॉ.बलजित सिंह - डायमंड हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ - 413
4. सं.श्यामसुंदर बी.ए. - हिंदी शब्दसागर (चतुर्थ भाग) , पृष्ठ - 2229
5. सं.रामचंद्र वर्मा - मानक हिंदी कोश (तिसरा खण्ड) , पृष्ठ -35
6. सं.कृ.पा.कुलकर्णी - मराठी व्युत्पत्ति कोश, पृष्ठ - 434
7. सं.प्रल्हाद नरहर जोशी - आदर्श मराठी शब्दाकोश (चतुर्थ भाग) , पृष्ठ - 513

उपर्युक्त अर्थों को देखने के पश्चात यह स्पष्ट होता है कि 'दलित' याने जिसका दलन हुआ है, जिन्हें रौंदा, या कुचला गया है। सदियों से जिसका शोषण-उत्पीड़न हो रहा है वही दलित है। अत: उच्च जातियों द्वारा जिस जाति को अछूत मानकर समाज से बहिष्कृत किया है वह दलित है। प्राचीन काल से भारतीय समाज में शूद्र माने गए लोगों के लिए दलित शब्द का प्रयोग होता आया है।

दलित शब्द का व्यापक अर्थ पीड़ितों के संदर्भ में आता है। इस अर्थ में 'दलित' नामक कोई जाति नहीं है। जिसका दलन किया जाता है वही दलित है।

3.2 दलित शब्द की परिभाषा :

हर एक शब्द अनेकार्थी होता है, अर्थात एक शब्द के अनेक अर्थ निकलते हैं। इसी प्रकार 'दलित' शब्द के अर्थ भी व्यापकता और सीमितता के संदर्भ में बदलते रहे हैं। मार्क्सवादी प्रत्येक शोषितों को जिसमें मजदूर, नारी, निम्न वर्ग आदि का समावेश हैं, को दलित मानते है। तो आंबेडकरवादी अनुसूचित जाति - जनजातियों जिन्हें समाजव्यवस्था में शूद्र माना है उन्हें दलित मानते हैं। अनेक विद्वानों ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से दलित शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उन्होंने 'दलित' शब्द की अलग-अलग परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं, जो दलित के अर्थ को स्पष्ट कर देती है। इन परिभाषाओं से 'दलित' शब्द के दो प्रकार के अर्थ स्पष्ट होते है -

3.2.1 व्यापक अर्थ -

डॉ.एन.सिंह दलित के बारे में लिखते हैं - "दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है- जिनका दलन या उत्पीड़न किया है। चाहे शस्त्र के द्वारा या शास्त्र के द्वारा..... इसमें स्त्री और पिछड़े वर्ग के साथ सवर्ण जातियों के वे लोग भी आते हैं जिनका किसी भी दशा में मानसिक या आर्थिक शोषण हुआ है।"[1] इस परिभाषा में दलित के संबंध में व्यापक दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। जिन लोगों का शोषण होता है उन्हें

---

1. सं.प्राचार्य सु.मो.शाह - राष्ट्रवाणी (द्वैमासिक) , पृष्ठ - 9

दलित माना है। भले वे सवर्ण भी क्यों न हो वह दलित है। शरणकुमार लिबांळे ने दलित की परिभाषा इस प्रकार दी है - " 'दलित' अर्थात केवल हरिजन या नवबौद्ध ही नहीं, बल्कि गाँव की सीमा से बाहर रहनेवाली सभी अछूत जातियाँ, अदिवासी, भूमिहिन, खेत मजदूर, श्रमिक, दु:खी जनता, भटकी बहिष्कृत जाति इन सभी का 'दलित' श्ब्द की व्याख्या में समावेश होता है। 'दलित' शब्द की व्याख्या केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नहीं होगी। इसमें आर्थिक तौर पर पिछडे हुए लोगों का भी समावेश करना चाहिए।"[1] इस व्याख्या में दलित शब्द का व्यापक अर्थ परिलक्षित होता है।

महाराष्ट्र में विशेष रूप से दलित साहित्य मराठी भाषा में लिखा गया है। इसलिए यहाँ मराठी के कुछ विद्वानों द्वारा दी दलित शब्द की परिभाषा इस प्रकार है – मराठी के डॉ.म.ना. वानखेडे ने दलित शब्द की परिभाषा इस प्रकार की है- "दलित शब्दाची व्याख्या केवळ बौद्ध अथवा मागासवर्गीय नव्हे, तर जे पिळले गेलेले श्रमजीवी आहेत. ते सर्व दलित या व्याख्येत समाविष्ट होतात."[2] (दलित शब्द की व्याख्या सिर्फ बौद्ध और पिछड़े वर्ग तक सीमित नही है, अपितु जो श्रमिक पीड़ित है वे सब दलित कहे जा सकते है।) डॉ.सदा कन्हाडे द्वारा दलित की परिभाषा इस प्रकार - "आर्थिकदृष्टया व सामाजिकदृष्टया मिळून एक सर्व समावेशक दलित वर्ग मानता येईल. त्यात कामगार, शेतमजूर, उपजीविकेसाठी श्रमणारे आणि अस्पृश्यही येतील। ज्यांची पिळवणूक होते ते दलित."[3] (आर्थिक और सामाजिक तौर पर सर्व सम्मिलित वर्ग दलित माना जा सकता है। उसमें कामगार, खेतमजदूर, श्रमिक और अछूत लोग आयेंगे। जिनका दलन होता है वह दलित है।) यह परिभाषा मार्क्सवादी विचाराधारा के आधार पर की है।

गिरिराज किशोर के विचारों से - "दलित जाति से नही होता, जो भी

---

1. सं.राजेंद्र यादव - हंस (मासिक), जनवरी 1997 पृष्ठ - 53
2. डॉ.वासुदेव मुलाटे - दलितांची आत्मकथने ः संकल्पना व स्वरूप, पृष्ठ - 11
3. वही - पृष्ठ - 11

समाज में अपनी अस्वीकृति की पराकष्ठा पर जी रहा है, वही दलित है।"[1] इस व्याख्या में समाज ने जिसे बहिष्कृत किया है उसे दलित माना है। वो किसी भी जाति का क्यों न हो।

उपर्युक्त विविध परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् 'दलित' शब्द का व्यापक अर्थ स्पष्ट होता है। व्यापक अर्थ में वो लोग 'दलित' है जिनकी कोई विशेष जाति नहीं होती। साथ-साथ मनुष्य की दुरावस्था, आर्थिक अभाव को देखा है। जो मानवीय हक्कों से वंचित है और सामाजिक तौर पर जिन्हें नकारा है, जिसका दलन हुआ है वह दलित है। भले वह सवर्ण जाति के क्यों न हो। इस व्यापक अर्थ में आदिवासी, भूमिहिन, मजदूर, श्रमिक, दु:खी जनता, भटकी बहिष्कृत जातियाँ, गरीब किसान आदि लोग जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़े है और सम्मान से रह नहीं सकते वे सब दलित हैं।

3.2.2 सीमित अर्थ -

ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में "डॉ भीमराव आंबेडकर ने हमें 'दलित' शब्द दिया। इसका मतलब सभी छोटी-छोटी जातियाँ एक हो गई, न कोई मोची, न चमार, न भंगी रह गया। दलित शब्द के अंदर सभी आ गए।"[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि निम्न जातियाँ ही दलित है। श्रीमन स्वामी बोधानंद जी के विचारों से- "दलित शब्द का प्रयोग इसलिए किया जाता है कि अग्रसर हिंन्दू जातियों ने भी इन बेचारों के समस्त धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि अधिकारों को जो मनुष्यतनधारी होने के कारण उन्हें स्वभाव से ही प्राप्त थे, ऐसा कुचल और दल ड़ाला है कि मनुष्य होते हुए भी उनकी अवस्था कुत्ते, बिल्ली और मक्खी-मच्छर से भी गयी बीती हो गयी हैं।"[3]

---

1. सं.राजेंद्र यादव - हंस (मासिक), जनवरी 1999 पृष्ठ - 150
2. सं.रतनकुमार पांडेय - अनभै (मासिक), 2004 पृष्ठ - 35
3. डॉ.मुन्ना तिवारी - दलित चेतना और समकालीन हिंदी उपन्यास, पृष्ठ - 5

इस व्याख्या में सदियों से जिनके अधिकारों को नकारा है और जो पशु से भी बदतर जीवनयापन करने के लिए मजबूर है उन्हें दलित कहा है।

मराठी के केशव मेश्राम द्वारा दलितों की परिभाषा इस प्रकार- "हजारो वर्ष ज्यांच्यावर अन्याय झाला अशा अस्पृश्यांना दलित म्हटले पाहिजे।"[1] (हजारो बरसों जिनपर अन्याय हुआ ऐसे अस्पृश्यों को दलित कहना चाहिए।) इस व्याख्या में केवल अस्पृश्यों को ही दलित माना है।

उपर्युक्त परिभाषाओं में दलित शब्द का सीमित अर्थ स्पष्ट होता है। इस अर्थ में दलित याने वे लोग जो सदियों से अस्पृश्य या हरिजन के नाते अन्याय- अत्याचार सहने के लिए विवश है।

3.3 हिंदी उपन्यासों में चित्रित दलित जीवन

भारतीय समाज व्यवस्था का शोषित, अपेक्षित अंग दलित समाज है। दलित शब्द का अर्थ है रौंदा हुआ, मसला या कुचला हुआ। दूसरे अर्थ में दलित वह है जिसका दलन हुआ है। सदियों से पीड़ित, प्रताड़ित दलित समाज उच्च वर्ग का गुलाम बना है। उच्चवर्गीय सवर्ण समाज दलितों का शोषण करता है और दलित समाज भाग्य का फेरा मानकर उसे सहते आया हैं।

हिंदी उपन्यासों में चित्रित दलित जीवन को समझने के लिए उसका इतिहास जानना जरूरी है। प्रेमचंद का उपन्यास साहित्य इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनिय है। डॉ.सुदेश बत्रा ने लिखा है - "प्रेमचंद पहले ऐसे साहित्यकार थे जिन्होंने राष्ट्रव्यापी जनचेतना और शोषित वर्ग की वास्तविक स्थिती को प्रकट किया।"[2] अत: स्पष्ट है कि हिंदी कथा साहित्य में दलितों, शोषितों की व्यथा को वाणी देने का सर्वप्रथम प्रयास प्रेमचंद जी ने किया है। हिंदी उपन्यास विधा को उन्होंने एक नई दिशा प्रदान की। हिंदी

---

1. डॉ.वासुदेव मुलाटे - दलितांची आत्मकथने ः संकल्पना व स्वरूप, पृष्ठ - 11
2. डॉ.सुरेश बत्रा - हिंदी उपन्यास बदलते परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ - 8

कथा साहित्य में दलितों के शोषण का चित्रण किया है। प्रेमचंद के दलित पात्र दुख, दर्द, यातनाएँ सहते है लेकिन अन्याय के खिलाफ प्रतिकार नहीं करते है। प्रेमचंद के 'रंगभूमि' का नायक सूरदास चमार है जो और लोगों की सहानुभूति पर जीवनयापन करता है। 'कर्मभूमि' का प्रमुख पात्र 'गूदड चौधरी' भी व्यवस्था से पीड़ित चमार है।

म.फुले, राजर्षि शाहू महाराज, म.गांधी, डॉ बाबासाहेब आंबेडकर, वि.रा. शिंदे तथा अन्य महामानवों के कार्य के परिणाम स्वरूप दलित समाज सजग हुआ है। अपने हक्क के लिए संघर्ष करने लगा है। उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता, आत्मकथा आदि साहित्य की विविध विधाओं में दलित जीवन का चित्रण बड़ी मात्रा में दिखाई देता है। डॉ.नगमा जावेद ने लिखा है- "दलित साहित्य में शोषित, पीडित, उपेक्षित, दलित जीवन का आक्रोश, आत्माओं का क्रंदन, व्यथा एवं वेदना है।"[2] प्रेमचंद के बाद अनेक हिंदी उपन्यासकारों ने दलित जीवन को विषय बनाकर साहित्य का निर्माण किया। दलित, शोषितों पर साहित्य की सर्जना करनेवाले लेखकों में प्रमुख है - प्रेमचंद, भैरवप्रसाद गुप्त, फणीश्वरनाथ रेणु, उपेंद्रनाथ अश्क, जगदीशचंद्र गुप्त, रामदरश मिश्र आदि।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'बंधुआ की बेटी', 'मनुष्यानंद' उपन्यास में दलित नारी को नायिका के रूप में चित्रित किया है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'अलका', 'निरूपमा', 'बिल्लेसुर बकरिया' उपन्यासों में दलित जीवन का चित्रण किया है। तो आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'गोली', 'उदमस्त' में दलितों के दुख, दर्द के चित्रण के साथ दलित चेतना को नया आयाम दिया है। 'धरती धन न अपना' में जगदीशचंद्र गुप्त ने चमारों के जीवन का प्रामाणिक चित्रण किया है। अमृतलाल नागर ने मेहतरों के जीवन पर 'नाच्यो बहुत गोपाल' लिखा है जिसमें ब्राह्मणी निर्गुणियाँ को मेहतरानी में विगलित किया हैं। इसमें निर्गुणियाँ वर्गांतरण में दलित समाज की वेदना की अभिव्यक्त

---

1. सं.रतनकुमार पांडेय - अनभै, जुलाई-सितंबर, 2004 पृष्ठ - 74

किया है। रामधारी सिंह दिवाकर कृत 'आग पानी आकाश में' हरिजन, डोम, धोबी, मेहतर, मल्लाह आदि निम्न जातियों के जीवन का चित्रण आया है। भगवती प्रसाद 'शुक्ल' के 'खारे जल का गाव' में चमार, कुर्मी, खटिक, कहार आदि तो चंदमोहन प्रधान के 'एकलव्य' में निषाद जाति के जीवन को उद्घाटित किया है। शिवप्रसादसिंह कृत 'अलग अलग वैतरणी' में दलित आक्रोश-क्रोध एवं विद्रोह का वास्तव चित्रण किया है। मधुकरसिंह कृत 'जंगली सूअर' में दलित मुक्ति के अनेक आयामों को रेखांकित किया है। गिरिराज किशोर के 'परिशिष्ट' में देश की महान शिक्षा संस्थान में जाति के आधार पर दाखिला प्राप्त करनेवाले दलित छात्रों की व्यथा- वेदनाओं को स्थान दिया है, तो 'यथाप्रस्तावित' में सवर्णो मानसिकता के शोषण का शिकार दलित पात्र बालेसर का दर्दनाक अंत दिखाया है। रमेशचंद्र शाह के 'किस्सा गुलाम' का नायक कुंदन डोम जाति का है। वह एक ब्राह्मण लडकी से शादी न कर देनेवाली सामाजिक व्यवस्था और वेद मंत्र पड जाने से कान में शीशा पिघलकर डाल देनेवाली धार्मिक व्यवस्था को नकारता है और विदेश में जाकर एलिस से शादी करता है।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित उपन्यासों में दलित जीवन का चित्रण आया है- रामदरश मिश्र - पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ, रांगेय राघव - कब तक पुकारूँ, उदयशंकर भट्ट - सागर लहरे और मनुष्य, राहुल सांस्कृत्यायन-सिंह सेनापति, भगवतीचरण वर्मा - भूले बिसरे चित्र, अमृतराय-बीज, रेणु- मैला आँचल, गोपाल उपाध्याय - एक-टुकडा इतिहास, भैरवप्रसाद-सती मैया का चौरा, आगरपुड़ि- नदी का शोर, दयाशंकर मिश्र - बेटी- बहू, यादवेंन्द्र शर्मा 'चंद्र' - पत्थर के आँसू, हजार घोडों का सवार, ब्रजभूषण-मंगलोदय, रमणिका गुप्ता- सीता, मन्नू भंडारी- महाभोज, दामोदर सदन - नदी के मोड पर, अब्दुल बिस्मिल्लाह-झीनी-झीनी बीनी चादरिया, रमेशचंद्र शाह-किस्सा गुलाम, भगचतीचरण उपाध्याय- खून के छीटें इतिहास के पन्नों पर, राजेंद्र अवस्थी- सूरज किरन की छांव, राकेश वत्स-जंगल के आसपास, हिमांशु जोशी- कगार

की आग, आदि उपन्यासों में किसी न किसी रूप में दलित जीवन का चित्रण आया है। इनमें दलित समाज के शोषण, उत्पीड़न, यातना से मुक्ति आदि के चित्रण के साथ दलित चेतना का स्वर देखा जा सकता है।

उक्त हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन का विविधांगी चित्रण हुआ है। दलितों में स्थित अंधविश्वास, लोककथा, लोकगीत, त्योहार, उत्सव, रूढ़ि-परंपरा, जातीय भेदाभेद, नारी की स्थिति, संगठन तथा समूहभावना आदि का वास्तवदर्शी चित्रण हुआ है। शिक्षा के अभाव के कारण दलित समाज में अंधविश्वास अधिक दिखाई देता है। इससे यह समाज शोषण का शिकार होता है। आज कुछ समाजसेवी संस्थाएँ, समाजसेवी, दलित हितैषी दलितों में रूढ़ि - परंपरा, अंधविश्वास के खिलाफ जनजागृति कर रहे हैं, उनका साथ साहित्यकार दलित समाज जीवन का वास्तव चित्रण करके दे रहे हैं। अत: स्पष्ट है कि हिंदी साहित्यकारों ने अपने साहित्य में बदलता दलित जीवन और उसके प्रभाव को रेखांकित किया है। दलित समाज में हो रहे परिवर्तन के कारण उनका सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन बदल रहा है। डॉ.कनैजियां का कहना है "हम मानते है कि जब तक एक साथ 'हम दलित' के सभी वर्गो के लोगों का कल्याण नहीं होगा तब तक इस समाज और देश का कल्याण नही हो सकता है।"[1] अत: स्पष्ट होता है कि विभिन्न वर्ग के धोबी, चमार, डोम, पासवान, मेहतर, पासी एक होने लगे हैं। उनमें एकता की भावना बढ़ने लगी है और अपना हित वो जानने लगे है।

डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर की 'शिक्षा, संगठन और संघर्ष' की त्रिसुत्री पर चलकर कुछ नए साहित्यकार हिंदी में आ गए। इस संदर्भ में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है- " हिंदी का दलित साहित्य देशव्यापी चेतना की उपज है। बुद्ध, कबीर, फुले और बाबासाहेब आंबेडकर इसकी प्रेरणा के स्त्रोत हैं। खास तौर से बाबासाहेब आंबेडकर ने दलिंतों को उनकी गुलामी का अहसास कराया और उन्हें वाणी दी।"[2]

---

1. सं.मोहनदास नैमिशराय - बयान, मासिक, सितंबर 2008 पृष्ठ - 32
2. डॉ.मुन्ना तिवारी - दलित चेतना और समकालीन हिंदी उपन्यास, (प्रस्तावना से उद्धृत)

अत: डॉ.एन. सिंह, डॉ.धर्मवीर, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, चंद्रिका प्रसार जिज्ञासु, तुलसीराम, संजीव आदि प्रमुख है। इन साहित्यकारों ने बाबासाहेब के मार्ग पर चलकर दलितों की व्यथा को उद्घाटित करने का तथा उनमें जनजागृती करने का प्रभावी प्रयास किया।

जयप्रकाश कर्दम ने 'छप्पर' में उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवाले दलित युवक चंदन की संघर्षगाथा को चित्रित किया है। चंदन की शिक्षा के कारण सवर्णो द्वारा उसके माँ-बाप को दी गयी पीड़ा, यातनाओं को दर्शाया है। मोहनदास नैमिशराय ने अपनी आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' में दलित जीवन के कटु अनुभवों को वाणी दी है। भारतीय समाजिक विषमता में दलितों ने जो सहा, भोगा है उसे ही इसमें अभिव्यक्ति मिली है। ओमप्रकाश वाल्मीकी ने आत्मकथा 'जूठन' में दलित जीवन की सच्चाईयों का चित्रण किया है। इसमें बचपन से लेकर पढ़-लिखकर आगे जानेवाले दलित व्यक्ति को सवर्णो द्वारा किस प्रकार बार-बार अपमानित किया जाता है, इसका दर्दनाक चित्रण किया है। मदन दीक्षित ने 'मोरी की ईट' में मेहतर जाति के माध्यम से दलित वर्ग के सुख:दुख, हर्ष-विषाद और रूढ़ियां तथा अंधविश्वास का सार्थक चित्रण किया है। कोयला क्षेत्र में काम करनेवाले आदिवासियों का ठेकेदारों द्वारा होनेवाला शोषण एवं अदिवासियों के अस्तित्व संकट पर आधारित संजीव के 'धार' में पिछडे वर्ग का सार्थक चित्रण हुआ है। अत: उक्त साहित्यकार दलितों का बदलता समाजजीवन, उनकी सामाजिक मान्यता और व्यवस्था का चित्रण करने में सफल हुए हैं।

आज के दलित लेखकों ने दलित समाज के उत्पीड़न और शोषण का कारण वर्ण एवं जाति केंद्रित हिंदू समाजव्यवस्था को माना है। जिसके कारण सामाजिक जीवन से दलित लोगों को अलग किया है। देवेंद्र चौबे के शब्दों में- "हिंदी के अधिकांश दलित लेखकों ने अपने रचनात्मक लेखन में 'जन्म' एवं 'जाति' के नाम हो रहे शोषण, दमन और उत्पीड़न को केंद्रीय आधार बनाते हुए दलित समाज की इन्हीं दु:खो से मुक्ति

की परिकल्पना की है। चाहे वह ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' जैसी आत्मकथात्मक कृतियां हो अथवा कौशल्या बैसंत्री कृत 'दोहरा अभिशाप'। मोहनदास नैमिशराय की 'अपने अपने पिंजरे' हो अथवा सूरजपाल चौहान कृत 'तिरस्कृत', जयप्रकाश कर्दम की 'नो बार' जैसी कहानियां हो अथवा शुशीला टाकभौरे की सिस्निमा।"[1]

अत: स्पष्ट है कि आज भी दलित उस मुकाम पर नहीं पहुँच पाए हैं, जहाँ सवर्ण जाति के लोग पहुँचे हैं। आजादी के बाद भी दलितों को वह सम्मान या स्थान नहीं मिल पाया है, जो अन्य जातियों को मिल चुका हैं। संविधान में दलितों को जो अधिकार मिला हैं अगर उसका ठीक से अमल हो जाए तो दलित समाज का विकास होगा।

3.4 दलितों की वर्तमान स्थिति -

भारतीय समाजव्यवस्था जातीयता पर आधारित है। दलित समाज देश का एक अंग होते हुए भी उपेक्षित रहा है। दलित याने जिन्हें रौंदा या कुचला गया हो। लेकिन दलित शब्द प्राचीन काल से शूद्र माने गए लोगों के लिए प्रयुक्त हुआ दिखाई देता है। भारतीय परंपरा में दलितों को जानवरों से भी बदतर जीवन जीने के लिए विवश किया है। श्रीमती कुसुम मेधवाल के शब्दों में - "दलित वर्ग का प्रयोग हिन्दू समाज व्यवस्था के अंतर्गत परंपरागत रूप से शूद्र माने जानेवाले वर्गों के लिए रूढ हो गया है। दलित वर्ग में वे जातियाँ आती हैं, जो निम्न स्तर पर हैं और जिन्हें सदियों से सताया है।"[2] अत: स्पष्ट है कि दलित याने मानवीय अधिकारों से वंचित और सामाजिक तौर पर नकारे गए लोग। डॉ.बलभीमराज मोरे के शब्दों में - "ऐसा नहीं कि जो दलित हैं वे ही मात्र शोषित हैं। हाँ; जो लोग शोषित हैं और जातिविशेष संदर्भ में भी दलित या पिछड़ी जाति से हैं उनका शोषण, अन्य शोषितों की तुलना में कुछ ज्यादा ही होगा।

---

1. सं.मोहनदास नैमिशराय - बयान, (मासिक) , सितंबर 2008 पृष्ठ - 11
2. डॉ.मुन्ना तिवारी - दलित चेतना और समकालीन हिंदी उपन्यास, पृष्ठ - 5

क्योंकि वे शोषित तो हैं ही उच्चवर्णीयों के जाति- विशेष अहंकार के भी शिकार है।"[1] इनका मतलब है कि सिर्फ दलितों का शोषण होता है ऐसा नहीं है। अन्य जातियों के लोगों का भी शोषण होता है। लेकिन यहाँ हमने उन्हें दलित माना है - जो अस्पृश्य है और सदियों से सवर्णों के अन्याय-अत्याचार सहते आये है।

स्वातंत्र्यतापूर्व काल से लेकर आज तक दलितोद्धार का कार्य हुआ है। दलितों को जाति विशेष के भेदभाव से मुक्त करने का प्रयास अनेक महामानवों ने किया है। इ.स. पूर्व काल में भगवान महावीर ने छुआछूत का डटकर मुकाबला किया। गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म का निर्माण करके दलित, अछूतों को मठों- विहारों में प्रवेश दिया। दलितो की स्थिति में परिवर्तन लाने के प्रयास रामानुजाचार्य, रामानंद, कबीर, चोखामेला, चैतन्यप्रभू, बसवेश्वर आदि संतों ने किए। आधुनिक काल में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, म. फुले, म.गांधी, राजर्षि शाहू महाराज, डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर आदि ने दलितों की स्थिति में परिवर्तन लाकर उनका उद्धार करने का कार्य किया है। डॉ. आंबेडकर ने दलित संगठन शक्ति के बल पर दलितों में चेतना का निर्माण करके जनजागृति का कार्य किया।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के संघर्षों के परिणामस्वरूप आजादी के बाद की युवा दलित पीढ़ी समाज के हर क्षेत्र में प्रशासन से लेकर विश्वविद्यालयों तक अपना स्थान निर्धारण करने में सफल हुई है। आज का दलित स्वयं को पिछड़ा हुआ एवं हाशिये पर जीने वाला नहीं मानता। वह भी अपने आप को समाज के प्रवाह के साथ निरंतर गतिमान रहनेवाला मानता है या तो ऐसा प्रयास कर रहा है। लेकिन दलितों की स्थिति में पर्याप्त परिवर्तन नजर नहीं आता। आज भी ज्यादातर दलित अपने अधिकारों से दूर हाशिये पर जिंदगी गुजार रहे हैं। वे अब तक मुख्यधारा का हिस्सा नहीं बन पाये इसके लिए प्रयास तभी सफल होंगे जब पढ़े - लिखे दलित इसे अपना कर्तव्य समझकर

---

1. डॉ.बलभीमराज मोरे - सामायिक लेख – आलेख, पृष्ठ - 39

योगदान देंगे। लेकिन आज के पढ़े-लिखे दलित सामाजिक प्रतिष्ठा के दंभ में अपने ही लोगों को भूल रहे है। डॉ.भारती गोरे के शब्दों में - "दलित समाज की भी अपनी कुछ कमजोरियाँ हैं। कई दलित अपनी जाति को लेकर हीनताबोध से ग्रस्त हैं तो कई स्वयं दलित होकर निम्नतर जातियों से व्यवस्थित दूरी बनाकर अपनी सवर्ण मानसिकता का प्रमाण देते हैं।"[1] अर्थात दलितों में भी छुआछूतवाले पैदा हो रहे हैं।

प.जवाहरलाल नेहरू की 1964 ई. में मृत्यू के बाद देश में काँग्रेस की पकड क्षीण होती गई। कई राज्यों से उनकी सत्ता समाप्त हुई। देश में नक्सलवादी आंदोलन शुरू हुए। संपूर्ण देश में विचित्र परिस्थिती निर्माण हो गई। इसी दौरान आरक्षण का फायदा उठाकर शिक्षित हुई दलित पीढ़ी आगे आ गई। उन्होंने दलितों में जनजागृति करने का तथा चेतना फैलाने का कार्य किया। लेकिन कई शिक्षित दलित सामाजिक प्रतिष्ठा के दंभ में खुद को सवर्ण के रूप में मानकर अपने लोगों से ही दूर गए।

रोजगार के कारण ग्राम, नगर तथा महानगरों में जो दलित रहते हैं जिनके पास पद, पैसा, प्रतिष्ठा सब होता है लेकिन उन्हें रहने के लिए जगह नहीं मिलती। इस कारण उन्हें अपनी जाति को छिपाने को मजबूर किया जाता है। अत: स्पष्ट है कि आज भी जातीयता की भावना शेष है। प्रगति के इस युग में ग्रामीण जीवन में भी परिवर्तन आया है। रोजगार के अवसर, सरकारी योजनाओं की सहायता आदि से गाँव के दलितों की स्थिति में बदलाव आ रहा है, फिर भी गाँवो में जातीयता की भावना पूर्णत: समाप्त नहीं हुई है। कम मात्रा में भी क्यों न हो जातिभेद की बदबू आज भी आ रही है। आज भी गाँवों में दलितों का छुआ पानी तथा खाना ग्रहण करने में लोग हिचकिचाते है। अत: स्पष्ट है कि जाति का पता चलने पर सवर्ण लोंगो की मानसिकता बदलती है।

सदियों से दलित लोगों को अछूत समझा जा रहा हैं। सवर्ण लोग उनकी छाया को भी अपने उपर पड़ने नहीं देते थे। आज इस भावना में थोड़ा बहुत परिवर्तन

---

1. सं.प्राचार्य सु.मो.शाह - राष्ट्रवाणी (द्वैमासिक), मई-जून, 2007, पृष्ठ - 12

आया है। लेकिन यह सब बस, रेल आदि सार्वजनिक स्थलों तक सीमित दिखाई देता है क्योंकि इसके बिना काम ही नहीं चल सकता। इसके अलावा जो अस्पृश्य पेशे से जुड़े नहीं है ऐसे लोगों के साथ सवर्ण छुआछूत नहीं रखते है, लेकिन इससे सवर्ण मानसिकता नहीं बदली जा सकती। सुप्त मात्रा में दलितों के प्रति सवर्ण लोगों के मन में छुआछूत, अस्पृश्यता की भावना आज भी विधमान् दिखाई देती है।

दलितों के सामाजिक, आर्थिक, शोषण की समाप्ति के लिए शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर का मानना था कि शिक्षा के कारण ही लोग संघटित हो सकते है उन्हें अच्छे-बुरे का ज्ञान होता है। लेकिन दलित लोग शिक्षा के लिए उतने उत्साहित नहीं है जितने होने चाहिए थे। यह बात इस कथन से स्पष्ट होती है- "1991 की जनगणना के मुताबिक दलितों की आबादी पूरे देश की आबादी की 16.33% है। इतनी बड़ी आबादी जो पूरे देश की एक चौथाई है, की शैक्षिक हालत पर नजर डालें तो आँकडे उत्साहवर्धक नहीं है। पूरे में पुरूषों की शिक्षा का प्रतिशत 75.05% तथा महिलाओं का 54.16% हैं जबकि दलितों और आदिवासी पुरूषों का शिक्षा का प्रतिशत कुल मात्र 40% पुरूषों में तथा कुल महिलाओं का मात्र 20% महिलाओं में है (Indian.ngo.com and education.nic.in)"[1] अत: इतने बरसों बाद भी अन्य लोगों के मुकाबले दलितों में शिक्षा का व्यापक प्रसार दिखाई नहीं देता।

आजादी के साठ साल बाद भी हम इस बात का इन्कार नहीं कर सकते है कि दलितों ने कुछ पाने के बजाए खोया ही हैं। आज के कुछ दलित नेता अपने समाज के विकास को छोड़कर अपने खुद के विकास पर ध्यान देते हैं। वे अपने हितों के लिए अन्य उच्चवर्गीय नेता, दलों एवं धनिक लोगों के आगे झुकने के लिए तत्पर दिखाई देते है। इसलिए वे अपने ही समाज का बलिदान देते हैं। अत: स्पष्ट है कि राजनीति में आए दलित अपने ही लोगों के साथ राजनीति करते रहे हैं।

---

1. सं.मोहनदास नैमिशराय - बयान, (मासिक) , सितंबर 2008 पृष्ठ - 14

स्वतंत्र्यता प्राप्ति के पूर्व दलितों के प्रति हीन व्यवहार किया जाता था। उनके टूटे-फूटे झोपडे भी गाँव के बाहर होते थे। दलितों का जीवन निम्न स्तर का था। उनके सामने अनेक समस्याएँ थी। इसे जूँझने में ही वे अखंडित लगे रहते थे। आजादी के बाद उनके जीवनस्तर में धीरे-धीरे परिवर्तन आया। भारतीय संविधान में दलित हितों के प्रावधान किए गए। शिक्षा में स्कॉलरशीप, नौकरियों में आरक्षण आदि के कारण उनकी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति में बदलाव आया। आज शिक्षित बेकार दलित व्यक्ति को व्यवसाय के लिए कर्ज उपलब्ध करके प्रेरित किया जा रहा है। दलितों की मूलभूत आवश्यकताओं की तरफ ध्यान दिया जा रहा है। अत: स्पष्ट है कि आजादी के बाद दलितों के जीवन में बदलाव आ रहा है।

वर्तमान व्यवस्था में शासन द्वारा आरक्षण को बनाए रखने के कारण परिवर्तन की प्रक्रिया तेज होती नजर आ रही है। साथ-साथ कुछ राजनीतिज्ञ तथा उनकी पार्टियों की अनुदार नीति की झलके भी दलित विरोधी दिखाई देती है। कुछ पार्टियाँ दलित उद्धार के बहाने वोट पाने के लिए उन पर सुविधाओं की बौछार करते दृष्टिगोचर होती हैं। सत्य तो यह है की वर्तमान व्यवस्था में 'दलित' 'वोट बँक' बने है। अत: अपना स्वार्थ साधने हेतु इनका प्रयोग हो रहा है। 'वोट' के लिए सिर्फ दलितों का प्रयोग किया जा रहा है। सत्ता हासिल करने के बाद दप्तरी व्यवस्थानुसार विकास प्रक्रिया शुरू होती है। जो अत्यंत खोखली, भ्रष्ट और दलितों पर अन्याय करनेवाली दिखाई देती है।

3.5 'परिशिष्ट' उपन्यास में चित्रित दलित जीवन

गिरिराज किशोर ने प्रस्तुत उपन्यास में दलित समाज जीवन का अत्यंत सूक्ष्मता से अंकन किया है। लेखक ने दलित समाज की तमाम त्रासद स्थितियों को उद्घाटित किया है। आजादी के साठ साल बाद भी सवर्ण लोगों का दलितों की ओर देखने का जो घृणास्पद दृष्टिकोण है उसमें कोई बदलाव नहीं आया है। अज्ञान और

अशिक्षा के कारण दलित समाज उन्नति के मार्ग से दूर है। लेखक ने जातिगत विषमता के संदर्भ में देश की महान शिक्षा संस्थानों में पढ़नेवाले दलित छात्रों की त्रासदी को उद्घाटित किया है। अत: स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय समाज जीवन में स्थित दलितों की वास्तविक स्थिति को उद्घाटित किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने दलितों पर होते अन्याय को उद्घाटित तो किया है साथ ही उनका समाज, धर्म, राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था में स्थान तथा परंपरागत स्थिति को भी दर्शाया है। आधुनिक व्यवस्था के परिणाम स्वरूप उनके आचार-विचार, शिक्षा-दीक्षा, रहन- सहन में आए परिवर्तन को वाणी भी दी है। साथ साथ सवर्ण मानसिकता को भी उजागर किया है।

3.5.1 परंपरागत मान्यताएँ :

प्राचीन काल से भारतीय समाज में रूढ़ि, प्रथा, परंपराओं का प्रचलन चलता आ रहा हैं। प्रस्तुत उपन्यास में दलित समाज मे स्थित परंपरागत मान्यताओं को स्पष्ट किया हैं। बाबनराम अपने बेटे अनुकूल को इंजीनियर बनवाना चाहते हैं। लेकिन अनुकूल की माँ उसे घर से दूर पढ़ने के लिए भेजने के विरूद्ध है। वह कहती है- "रेल चढ़ा मरद और देहली लाँघी औरत कौन परतीत ? "[1] बावनराव उसे समझाने का प्रयास करते हुए कहते "पारवती, तेरा बेटा गनेस का औतार है। नहीं तो हम लोगों में ऐसा कौन परताब रखा था जो इतना पढ़ पाता।"[2] उनका मानना था कि ईश्वर ने अपनी संतान को पिता बनाकर मेरे संरक्षण में भेज दिया है। वे अनुकूल को किसी जन्म की पहुँची हुई आत्मा मानते है, जो किसी कारण पथभष्ट्र होकर उनके यहाँ आयी है। बावनराम रामायण के कुछ दोहे दोहराकर रोजाना नहाने के बाद पूजा करते हैं। अत: स्पष्ट है कि अवतार, आत्मा-परमात्मा, पाप-पुण्य, पूजा-पाठ, प्रार्थना की मान्यताएँ आज भी दलितों में प्रचलित है।

---

1. गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृष्ठ - 15
2. वही, पृष्ठ - 15

सदियों से पढ़ाई का अधिकार सिर्फ उच्चवर्णीयों को मिला है। दलितों को उन्होंने अपनी सेवा के साधन के रूप में इस्तेमाल किया है। प्रस्तुत उपन्यास में दलितों को पढ़ाई से दूर रखने के लिए तरह तरह की अफवाहें फैलायी दिखाई देती है। नीलम्मा को रामउजागर के गाँव का खलाशी कहता है-" पढ़ाई-लिखाई आदमी को कुदात-कुदात मार डालित है। हम लोगन का हाजमा पढ़ाई-लिखाई के लिए नाहीं बना बा।"[1] अत: दलितों में पढ़ाई के बारे में अनेक गलत मान्यताएँ फैलायी हैं। पढ़ने से आदमी गुमसूम रहता है। आदमी में सैतान प्रवेश करता है। लडकियों के पढ़ने से लांच्छन लगता है आदि। अत: स्पष्ट है कि दलितों को शिक्षा से दूर रखने के लिए उच्चवर्णीयों ने अनेक तरिकें अपनाये हैं। रूढ़ि-परंपराओं में जखड़े दलित समाज में शिक्षा व्यवस्था से ही बदलाव संभव है। अत: उन्हें भी परंपरागत गलत मान्यताओं को त्यागना होगा।

3.5.2 धर्म के संबंधी दृष्टिकोण -

भारतीय समाजव्यवस्था में धर्म का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय समाज पर धर्म का प्रभाव रहा है। मानवता की सेवा, परोपकार ही धर्म है। दुनिया के प्रत्येक धर्म में मानवता का भाव है। धर्म को जीवन जीने की कला माना जाता है। लेकिन कुछ लोगों ने धर्म का गलत अर्थ लगाया है इसलिए आज भी धर्म का रूप विकृत हो गया है। मूल बातों को छोड़कर लोग दिखावे पर ध्यान दे रहे हैं। दलितों के प्रति उच्च वर्ग के लोग सदियों से मन में घृणा तथा जातीयता का भाव पालते आ रहे हैं। इसके पीछे धार्मिक मानताएँ, परंपराएँ है। इसी कारण भी प्रस्तुत उपन्यास में दलितों का दृष्टिकोण परंपरावादी दिखाई देता है।

बावनराम, अनुकूल के आई.आई.टी. के प्रवेश के संबंध में सांसद चौधरी से मिलने जाते है। वहाँ बावनराम अनुकूल को सांसद के पाँव छूने को कहते है, लेकिन यह बात अनुकूल को अच्छी नहीं लगती। तब बामनराव स्पष्ट करते हैं कि हमारा धर्म

---

1. गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृष्ठ - 201

ही सेवा करना है लेकिन हम धर्म से भटकते हैं। वे कहते है- "भगवान ने किसी को बड़ा बना दिया तो बना दिया। उसे छोटा करना हमारे हाथ में नहीं।"[1] यहाँ दलितों की परंपरागत मानसिकता दृष्टिगोचर होती है।

अनुकूल को दलित जाति के कारण आई.आई.टी. में दुख, दर्द, पीड़ाएँ सहनी पड़ती है। वह यह सब बातें पिता को लिखता है, तब उसके बाबूजी को लगता है कि हिंदू होकर हमारे घर में जन्म लेने से उसे वेदना भुगतनी पड रही है। इस बात पर अनुकूल की माँ कहती है- "हिन्दू धरम की महेमा तो देवताओं तक ने गायी है। और धरम भी थे, उनकी महेमा क्यों ना गा दी ? यही अकेली नैया है पता भी नी चलता, पार लगा देती है। बिसवास तो हो।"[2] अत: अनुकूल की माँ का धर्म के प्रति परंपरावादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है।

3.5.3 हीनता की भावना –

प्राचीन काल से सवर्णों ने दलितों को दबाया है, हीन माना है, सवर्णों की सेवा का साधन के रूप में उनका इस्तेमाल किया है। परिणामत: दलितों के मन में यह भावना हमेशा रहती है कि सवर्णों के प्रति कभी भी मुँह नहीं खोलना चाहिए। उन्हें यह एहसास हमेशा रहता है कि हम इन लोगों की जूठन पर पले हैं। प्रस्तुत उपन्यास में अनुकूल के पिता दलित जाति के हैं। उन्होंने 'फैक्ट्रि' में काम किया है। वे अपने लोगों से अलग दिखते हैं। फिर भी उनके मन में सवर्णों के व्यवहार के प्रति अलग भावना दिखाई देती है। अनुकूल को लगता है - "बाबू के मन में जरूर हर समय एक सलवट रहती है---- हम छोटे हैं, हम दलित हैं --- और --- और अस्पृश्य हैं।"[3] बावनराम अपने को छोटा आदमी मानते हैं। वे अनुकूल को आई.टी.में आरक्षण के तहत दाखिल करना चाहते हैं। इस संदर्भ में वे सांसद चौधरी साहब को कहते है - "लड़का पढ़ने में

---

1. गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृष्ठ - 29
2. वही, पृष्ठ - 161
3. वही, पृष्ठ - 22

होशियार है। होनहार बच्चा है। कुछ करा देंगे तो आप ही का नाम रोशन करेगा..... हमेशा आपकी जूती बनकर रहेगा।"[1] यहाँ पर दलितों के मन की हीनता की भावना स्पष्टता से परिलक्षित होती है। दलित हरसमय अपने को छोटा, हीन, कमजोर समझते आये हैं। लेकिन इसके लिए वे स्वयं जिम्मेदार नहीं है क्योंकि सदियों से सवर्णों द्वारा उन्हें दबाया गया है। उनके मन में आज भी हीनता की भावना बनी रही है।

3.5.4 आर्थिक स्थिति :

दलित समाज प्राचीन काल से पशुतुल्य जीवन जीता आया है। सदियों से उनपर अमानवीय अत्याचार होते रहे हैं। वे लोग छोटे-मोठे काम करके अपना जीवनयापन करते हैं। उनका पूरा जीवन ही शारीरिक श्रम पर आधारित है। आर्थिक अभाव इन लोगों का पिछा ही नहीं छोडता। आजादी के बाद दलितों की स्थिति में धीरे-धीरे परिवर्तन आया है लेकिन आज भी उनकी आर्थिक स्थिति में बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ है। दलितों के लिए सबसे बड़ा शाप निर्धनता है। प्रस्तुत उपन्यास में दलितों का जीवन अभावों में बितता दिखाई देता है। दलित लोगों के बच्चे शिक्षा की ओर ध्यान न देकर दुकानों में छोटे-मोठे काम करते हैं। उनके द्वारा कमायें पाँच-सात रूपये उनके घरवालों के लिए आधार होते हैं। आज आरक्षण के प्रावधान के अंतर्गत देश का महान शिक्षा संस्थान आई.आई.टी. में दलित बच्चें पढ़ने जाते हैं लेकिन यहाँ पढ़नेवाले दलित छात्र कमजोर आर्थिक स्थितिवाले परिवारों में से ही आते हैं। वे आर्थिक स्थिति के कारण अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते। पैसों के अभाव में कुछ छात्र आई. आई. टी. तक छोड़ आते है। अत: स्पष्ट है कि दलितों को आर्थिक अभावों का सामना करना पड़ता है।

सदियों से दलित परंपरागत काम करते आये हैं - जैसे मरे हुए ढोरों की खिदमत करना। प्रस्तुत उपन्यास में बावनराम, उनके दामाद तथा बिरादरी के अन्य लोग

---

1. गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृष्ठ - 62 - 63

'फैक्ट्रि' में काम करते दिखाई देते है। बावनराव कहते है - "अपने जमाने में मैंने गाँव का पुश्तैनी काम त्यागकर फैक्ट्रि की नौकरी यही बताने के लिए की थी कि हम लोग गाँव के मरे हुए ढोरों की खिदमत के लिए ही नहीं बने, हम फैक्ट्रियों में भी काम कर सकते हैं....."[1] निष्कर्षत: हम कह सकते है कि दलितों में धीरे- धीरे परिवर्तन हो रहा है। वे परंपरागत काम त्यागकर दूसरे कामों में लगे हैं। लेकिन अभी भी दलितों को बहुत बड़ा मुकाम हासिल करना है। अत: उनकी बदलती सोच अन्य पीढ़ीयों के लिए दिशा निर्देशन देती है।

3.5.5 रहन – सहन :

विवेच्य उपन्यास में प्राप्त दलित जीवन प्राय: अर्थाभाव से ग्रस्त है। डॉ.प्रकाश चिकुर्डेकर ने लिखा है - "स्वाधीनता के बाद गाँव और गाँव की विसंगतियों को दृष्टि में रखकर विकास योजनाएँ बनाई गई। लेकिन परम्पराओं से ग्रस्त समाज जीवन में आज भी अर्थाभाव पाया जाता है। आजादी के 50 सालों बाद भी आज कई गाँव यथास्थित नजर आते हैं।"[2]

प्रस्तुत उपन्यास में दलित लोगों के सिरसा गाँव का वर्णन प्राप्त होता है। इससे दलित लोगों के जीवनस्तर पर प्रकाश डाला जा सकता है। इस गाँव में कोरी, काँछी, साध, चमार आदि लोग रहते हैं। यह एक आम गाँव जैसा गाँव है लेकिन इस गाँव की हालत बदतर है। यहाँ ज्यादातर झोंपड़ियाँ या कच्चे खपरैलवाले घर हैं। खुले पर कच्ची नाली है जिसमें कीडे सिलबिला रहते है। बदबू के कारण वहाँ खडा रहना भी मुश्किल है। उस गाँव में नंग- धड़ंग बच्चे यहाँ–वहाँ घूमते है तो कीचड से सनकर सूअर दौड़ते हैं। गाँव की हालत इतनी बदतर है कि कोई मेहमान आये तो मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना मुश्किल है। अत: स्पष्ट है की दलित लोगों के जीवन का स्तर निम्न है। वे अभावग्रस्त जीवनयापन जी रहे हैं।

---

1. गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृष्ठ - 13 - 14
2. डॉ.प्रकाश चिकुर्डेकर - रामदरश मिश्र के उपन्यासों में समाज जीवन, पृष्ठ - 220

3.5.6 अंधविश्वास :

मनुष्य के विकास में धर्म का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। धर्मव्यवस्था में पूजा-पाठ, प्रार्थना आदि को स्थान रहता है। अशिक्षा के कारण दलित अंधविश्वास से जुड़े हैं। परंपरागत रीति- रिवाजों का गहरा प्रभाव दलितों पर दिखाई देता है। दलितों में स्थित अंधविश्वास को लेकर डॉ.मुन्ना तिवारी के शब्द है - "दलित जाति के विद्रोह के कुंठित होने का कारण उनका अंधविश्वास है। अंधविश्वास ने तो सारे समाज को हानि पहुँचायी है। धार्मिक कर्मकांण्ड और अंधविश्वास ब्राह्मणों का हथकंडा रहा है। उसने सभी ब्राह्मणेत्तर जातियों को अंधरीतियों के फँदे में फँसाया है।"[1] अत: स्पष्ट है कि कुछ लोगों ने खुद के स्वार्थ के लिए धर्म का उपयोग किया है। आज का युग विज्ञान का है, फिर भी अज्ञान एवं अशिक्षा के कारण गाँवो के दलित लोग अंधविश्वास से जुड़े है।

प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित सिरसाँ गाँव के दलित लोगों में यह समझ है कि शहर में जादू की पढ़ाई होती है। शहर की पढ़ी- लिखी औरतों से वे बहुत डरते है। उनका मानना है कि, वे मनुष्य को बकरा बना देती है। अत: दलितों को पढ़ाई से दूर रखने के लिए उच्चवर्णीय लोग अनेक भ्रम फैलाते आये हैं। दलित छात्र रामउजागर का मानसिक संतुलन बिघड़ने के कारण वह एक साल की 'लीव' पर घर आता है तब उसे घरवाले डॉक्टर के अलावा गाँव के बाबा के पास ले जाना चाहते हैं। उन लोगों का मानना है कि वह बाबा भूत- प्रेत उतरता है। रामउजागर यह बात नहीं मानता। अत: स्पष्ट है कि दलित लोग जब तक अंधविश्वास को पालते रहेंगे तब तक उनकी स्थिति में परिवर्तन असंभव प्रतित होता है। रामउजागार का बाबा के पास जाने के लिए विरोध शिक्षा का परिणाम प्रतित होता है। अत: दलित समाज में मूलभूत परिवर्तन लाने के लिए उनमें शिक्षा के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है।

---

1. डॉ.मुन्ना तिवारी - दलित चेतना और समकालीन हिंदी उपन्यास, पृष्ठ - 19

3.5.7 व्यसनाधीनता -

प्राचीन काल से दलितों को शिक्षा से दूर रखा गया है। उन्हें सिर्फ सेवा का साधन समझा जा रहा है। अशिक्षा, अज्ञान, कठिन परिश्रम आदि कारणों से दलितों में व्यसनाधीनता फैली है। दलित समाज में अधिकतर शराब पीने का व्यसन दिखाई देता है। वे अपना दुख-दर्द, यातनाएँ भूलने के लिए नशापान करते हैं। दलित लोग शराब पीकर अपनी पत्नी को भी मारपीट करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में इसका चित्रण मिलता है। बाबूराम की बहन सुंदर और गुणी है। दलित होकर भी वह आठवीं तक पढ़ी है। उसका पति सरकारी नौकरी में है, लेकिन शराब के नशे में वह अपनी पत्नी को बार-बार पीटता है। एक बार तो वह हद ही करता है। उसने शराब पीकर जुआ खेला, पत्नी को दाँव पर लगाया और हार गया। बाबूराम के पिताजी बेटी को छुड़वाकर घर ले आयें। महाभारत में तो युधिष्ठर ने बिना नशापान कर द्रोपदी को दाँव पर लगाया था, लेकिन दलित समाज के आधुनिक युधिष्ठर शराब के नशे में अपनी पत्नियों तक दाँव पर लगाते हैं। अनुकूल के जीजा जी भी उसकी दीदी को शराब के नशे में गालियाँ देते हैं। छोटे जीजा जी खुद शराब पीकर पत्नी को भी पीने को कहते हैं कभी- कभी पीटते भी है।

अत: स्पष्ट है कि दलित समाज में व्यसनाधीनता अधिक बढ़ती जा रही है। परिणामत: पारिवारिक जीवन पर बुरा असर दिखाई देता है। परिवार टूट जाते हैं। परिवार को अनंत यातनाएँ सहनी पड़ती है। नशापान के कारण ही वे अनेक बीमारीयों से भी ग्रस्त रहते हैं। व्यसनाधीनता तो 'दलितों' के लिए अभिशाप है।

3.5.8 दलितों में भेदभाव -

दलित समाज अपनों में भी भेदभाव, छुआछूत का पालन करता है। अत: आश्चर्य की बात है की जो समाज अस्पृश्यता, छुआछूत, जातिभेद के खिलाफ परिवर्तन की माँग करता है वही अपनी अन्दर की परंपरागत रूढ़ियों एवं मान्यताओं में बदलाव करने में कचराता हैं। दलितों में भी अनेक जातियाँ, उपजातियाँ प्रचलित हैं। वे

आपस में न एक साथ भोजन करते है न बेटी व्यवहार। आजादी के साठ साल बाद भी इस स्थिति में बुनियादी परिवर्तन नहीं आया है।

प्रस्तुत उपन्यास में यह बात स्पष्ट हुई है। आई.आई.टी. के हॉस्टेल में बाबूराम नामक लड़के को कोई भी दलित छात्र अपने रूम में नहीं लेता क्योंकि वह वाल्मिकी जाति का है, जो दलितों में निम्नस्तर की मानी जाती है। अनुकूल उसे अपने साथ रखता हैं तो कुछ दलित छात्र ही व्यंग्य से अनुकूल को गांधीजी कहते है। अनुकूल की माँ को यह बात पता चलती है तो वह बैचेन हो जाती है। वे कहती है "अनुकूल ने यह क्या करा---? बिरादरीवालों को पता चलेगा तो कोई पास नहीं फटकेगा। उससे कह दो, कमरा बदल ले।"[1] वह इस बात पर अड़ी रहती है कि अनुकूल की शुद्धी करके ही उसे घर में लेंगी, चाहे इसलिए उसके प्राण भी क्यों न जाए।

अत: स्पष्ट है कि दलित भी आपस में भेदभाव मानते हैं एक दलित दूसरे दलित के साथ भेदाभेद करता है।अगर दलितों की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाना है तो उन्हें आपस के भेदभाव को मिटाना होगा।

3.5.9 छुआछूत -

आज भी भारतीय समाज आपस में छुआछूत, ऊँच-नीच, स्पृश्य-अस्पृश्यता की मान्यताओं को पाल रहा है। उच्चवर्णीयों ने सदियों से ही दलित समाज को अछूता माना है। दलितों का स्पर्श, उनके हाथ से बना खाना, छुआ हुआ पानी पीना सवर्णो ने बरसों से वर्ज माना है। प्रस्तुत उपन्यास में छुआछूत का चित्रण प्राप्त होता है। बावनराम और अनुकूल सांसद चौधरी के घर अतिथिगृह में ठहरते हैं। अनुकूल नहाने के लिए बाथरूम में जाता है। एक पंड़ित साबुदानी लाते समय भीगे फर्श पर पड़े अनुकूल के पैरों के निशानों से बचकर चलता है। उसे लगता है कि पैरों के निशानों पर अपना पाँव पड़ जाने से ही कहीं उसे छूत न लग जाये। आई.आई.टी. में वाल्मिकी नामक

---

1. गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृष्ठ - 100

दलित लड़का सवर्ण लड़के से 'शैक हैण्ड' करता है। पहले वह सवर्ण लड़का अपना हाथ उलट-पुलटकर देखता है और जेब में डालता है। तब शेष उसके साथी उसपर हँस देते है।

अत: आज के आधुनिक युग में भी समाज में छुआछूत, स्पृश्य-अस्पृश्यता का अस्तित्व स्पष्टता से परिलक्षित होता है। यह परिस्थितियाँ देश-प्रदेश के अनुसार कम-अधिक-मात्रा में सभी स्थानों पर बरकरार दिखती है। प्रस्तुत उपन्यास की यह प्रधान प्रवृत्ति है।

3.5.10 विवाह :

प्राचीन काल से लेकर आज तक समाज में विवाह संस्था कायम दिखाई देती है। सामाजिक स्वास्थ्य के लिए विवाह अनिवार्य है। आज विवाह संस्था में अनेक बदलाव आ रहे है। समाज में पुनर्विवाह, प्रेम विवाह, अन्तर्जातिय विवाह हो रहें जो बदलते समाज का निर्देशक है तो बालविवाह, अनमेल विवाह, जरठ विवाह समाज में एक समस्या के रूप में सामने आए हैं। प्रस्तुत उपन्यास में दलितों में होनेवाले बालविवाह का चित्रण प्राप्त होता है। दलित समाजों में जल्दी ही विवाह संपन्न होते है। बावनराम का लड़का अनुकूल जब आठवीं कक्षा पास करता है तो उसके भी विवाह के प्रस्ताव आने लगते हैं लेकिन बावनराम का मानना था कि ऐसा विवाह 'शारदा ॲक्ट' के विरूद्ध होगा, हमें जेल में जाना पड़ेगा। बिरादरी के लोगों का मानना था कि "हमारा-तुम्हारा ब्याह भी तो सारदा एक्ट के खिलाफ ही हुआ था। हम सब तो जेल के बाहर मस्ती से घूम रहें हैं।"[1] जब अनुकूल के लिए चौधरी रामप्रसाद की बेटी का रिश्ता आता है तो बावनराम को छोड़कर सब घरवाले तैयार दिखाई देते हैं। वे लड़ाई- झगडे पर आते हैं। अत: स्पष्ट है कि विवेच्य उपन्यास में चित्रित दलित समाज में बालविवाह संपन्न होते नजर आते हैं।

---

1. गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृष्ठ - 12

3.5.11 शिक्षा :

मनुष्य जीवन की प्रगति के लिए हर व्यक्ति शिक्षित होना आवश्यक है। शिक्षा से मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होता है। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवनभर चलती है। शिक्षा का कार्य है- व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक क्षमताओं का विकास करना याने व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना। व्यक्ति तथा समाज की प्रगति के लिए शिक्षा का स्थान महत्तवपूर्ण है। लेकिन प्राचीन काल में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सिर्फ उच्चवर्णीयों को ही था। सदियों से दलितों को शिक्षा से वंचित रखा गया है। उन्हें सवर्णों के साथ पाठशाला में भी बैठने नहीं दिया जाता था। अगर कोई दलित पढ़ भी जाता है तो जमींदार, सामंत लोग नाराज होते थे। उनका मानना था कि शिक्षा प्राप्त कर यह हमारी बराबरी करना चाहते हैं। आजादी के बाद भारत सरकार ने भी शिक्षा योजना पर बल दिया। आज अनिवार्य और मुफ्त शिक्षा के कारण दलित वर्ग तक शिक्षा का विस्तार हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यास में दलित लोगों की शिक्षा विषयक मान्यताएँ स्पष्ट होती है। बावनराम दलित जाति के हैं फिर भी उनके पिता ने उन्हें दसवीं तक पढ़ाया था। इस वक्त उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। बावनराम भी अपनी बेटियों को पढ़ाना चाहते हैं लेकिन उनकी पत्नी विरोध करती है, उसका मानना था कि अपनी जमात में पढ़ी-लिखी लड़की की शादी होना मुश्किल है। दो चार अन्य लड़कियाँ पढ़-लिखकर घर बैठी थी। दलितों के सिरसाँ गाँव की लडकियाँ पढ़ती ही नहीं हैं। वहाँ यह मान्यता है कि पढ़ाई से लांच्छन लग जाता है। अत: स्पष्ट है कि दलितों में लडकियों को पढ़ाया नहीं जाता। दलित पढ़ाई से दूर रहे इसलिए सवर्ण लोग तरह तरह की अफवाहें और डर उत्पन्न करनेवाले भ्रम फैलाते हैं।

बावनराम का लड़का अनुकूल बिरादरी और 'फैक्ट्रि' में काम करनेवालें लोगों के बच्चों में पहला लड़का था, जो दसवीं पास हुआ है। उनकी बिरादरी अनेक लड़को ने पढ़ना शुरू किया था, लेकिन ज्यादातर लड़के चौथी कक्षा के आगे पढ़ नहीं

पाये थे। कूछ लड़के छठी कक्षा तक पढ़े और उनकी पढ़ाई बंद हो गई। दलितों में कुछ लड़के ऐसे भी थे जिन्होंने स्कूल का मुँह तक देखा नहीं था। शिक्षा के बारें इनकी भावनाएँ थी - "कलक्टर साहब थोडे ही बनाना था।"[1] अत: स्पष्ट है कि दलित लोग शिक्षा की तरफ ध्यान नहीं देते हैं।

3.5.12 राजनीतिक स्थिति :

म.गांधी म.फुले, राजर्षि शाहू महाराज, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, आदि समाजसुधारकों ने दलितों की स्थिति में बदलाव लाने के प्रयास किये। आरक्षण के प्रावधान से दलितों को शिक्षा, नौकरियों के साथ राजनीति में भी प्रवेश मिला। लेकिन वहाँ पर भी उन्हें दुय्यम स्थान ही मिला। राजनीतिक यथार्थ पर अनुकूल भाष्य करता है - "मुझे लगता है कि राजनीति के लोगों ने छूट के छोटे-छोटे टुकड़े डाल डालकर अपना तो स्वार्थ सिद्ध किया, पर हम लोगों का रहा सहा सत्व भी हर लिया। बैसाखियाँ थमा दी गयीं जिससे पाँव कमजोर बने रहें। जब चाहे बैसाखियाँ हटा लें और हम लोग धड़ाम से जा गिरें। बस टाँगो का जोर जबान में आ गया।"[2] अत: स्पष्ट होता है कि राजनीतिज्ञों की ओर से दलितोद्धार करने के फैसले तो लिए जाते है लेकिन उसका अमल ठिक तरह से होता है यह नहीं देखा जाता। अत: राजनीतिक स्तर पर इस विषय को लेकर उदासिनता दिखाई देती है।

3.5.13 दलितों मे परिवर्तन :

भारतीय समाज जीवन में विशेषत: दलितों ने सवर्ण लोगों की सेवा करने का काम किया है। दलितों को मनुष्य की तरह जीने का हक नहीं था। दलितों का जीवन हीन, पशुतुल्य बन गया था। परंतु स्वतंत्र्यता के बाद सरकारी प्रयास, समाजसुधारकों का कार्य, संविधान का निर्माण, शिक्षा, आरक्षण, स्कॉलरशिप, स्वयंसेवी

---

1. गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृष्ठ - 12
2. वही, पृष्ठ - 166

संस्था का कार्य, औद्योगिकरण आदि कारणों से दलितों के जीवन में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है। दलित यह बात जानने लगे है कि शिक्षा से ही वे अपने जीवनस्तर में सुधार ला सकते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में दलितों को अधिक से अधिक शैक्षिक सुविधाएँ देने पर जोर दिया है। जिससे वे सवर्णों के बच्चों से बराबरी करे। इसके लिए सरकार की और से शिक्षा व्यवस्था में आरक्षण रखा गया है। आरक्षण से ही बावनराम अपने बेटे अनुकूल को पढ़ाई के लिए आई.आई.टी. में भेजते है। वहाँ अनेक दलित छात्र भी पढ़ने के लिए आते हैं। बावनराम उच्चवर्णीय छात्र खन्ना की धमकी के कारण अनुकूल को घर आने को कहते तब अनुकूल कहता है - "हम लोगों को कभी-न-कभी अपने दिलों के डरों से मुक्त होना ही पड़ेगा। जब तक हम अपने को उठाकर उपर न खड़ा कर लें तब तक हर एक क्षण हमको इन स्थितियों का सामना करते रहना पड़ेगा। उनका सामना यहाँ रहकर करूँ या कही ओर--- क्या फर्क पडता है।"[1] जब बावनराम अनुकूल को सांसद चौधरी साहब के पैर छुकर प्रणाम करने को कहते है तब अनुकूल इसके लिए विरोध करता है। हॉस्टेल में जातिभेद होता है तब रामउजागर दलित छात्रों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहने के लिए प्रेरित करता है। "भगत बनकर कबीर के निर्गुन गाने से काम चलनेवाला नहीं। ये लोग तो चाहते हैं तुम निर्गुन गाते रहों और वे कल्बों में बाल डान्स करते रहें।"[2] दलितों में भी कुछ लोग आपस में भेदभाव मानते है तो बावनराम को लगता है- हम लोग आपस में इस तरह घृणा करेंगे तो फिर उँची जातवालों की घृणा के विरूद्ध किस मुँह से आवाज उठायेंगे? अत: वे दलितों में एकता की आवश्यकता महसूस करते हैं, तब ही दलित लोग सवर्णों के अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए तैयार होंगे। बावनराम को लगता है कि उनका बेटा अनुकूल डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर की तरह दलित लोगों को रास्ता दिखाने का कार्य करें।

1. गिरिराज किशोर - परिशिष्ट, पृष्ठ - 191
2. वही, पृष्ठ - 113

अत: विवेच्य उपन्यास में शिक्षा के कारण दलितों में आया परिवर्तन दिखाई देता है। प्राचीन काल से दूसरों की सेवा करने में जुटे दलितों को भी इन्सान बनकर जीने के रास्ते खुल रहे हैं। सच- झूठ, न्याय-अन्याय को वे लोग समझ रहे हैं। अब परिवर्तन की प्रक्रिया भी तेज हो रही है।

निष्कर्ष :

'दलित' शब्द का अर्थ शब्दकोश तथा विद्वानों के अनुसार व्यापक और संकुचित दोन्हों रूप में स्पष्ट होता है।व्यापक अर्थ में वह दलित है जिसकी कोई जाति नहीं होती। जिसका दलन किया जाता है वह दलित है। संकुचित अर्थ में दलित याने वे लोग जो सदियों से अस्पृश्य या हरिजन के नाते अमानवीय अन्याय-अत्याचार सहते आये हैं।

भारतीय समाजव्यवस्था जातीयता पर आधारित है। दलित, समाज का एक अंग होते हुए भी सदियों से उपेक्षित रहा है। जातीयता के कारण दलितों को अन्याय-अत्याचार का सामना करना पड़ता है। जातिनिष्ठ समाज में दलितों को बार-बार अपमानित होना पड़ता है। दलितों के प्रति सवर्ण लोगों के मन में घृणा दिखाई देती है। दलित वर्ग के अंतर्गत भी भेदाभेद दृष्टिगोचर होता हैं। वे आपस में एक साथ भोजन तक करते नही है, न बेटी व्यवहार। बरसों से दलितों को दबाया गया है, सेवा के साधन के रूप में उनका इस्तेमाल किया गया है। अत: दलितों के मन में हीनता की भावना पैदा हो गई है। वे अपने को छोटी जाति का या हीन मानते आ रहे हैं। अज्ञान, अशिक्षा के कारण दलितों में व्यसनाधीनता, अंधविश्वास का प्रचलन है। इनके कारण उनका पारिवारिक जीवन भी प्रभावित हुआ है। शिक्षा के अभाव में दलित लोगों में परंपरागत मान्यताएँ प्रचलित है। आर्थिक अभाव के कारण दलित लोग पीड़ित दिखाई देते हैं। उनका जीवन निम्नस्तर का ही रहा है।

स्वातंत्र्यतापूर्व काल से लेकर आज तक दलितोद्धार का कार्य हुआ है। आजादी के बाद संवैधानिक व्यवस्था, शिक्षा, आरक्षण आदि से दलितों के जीवन में बदलाव आ रहा है। उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की तरफ ध्यान दिया जा रहा है। आजादी के बाद धीरे- धीरे दलित जीवन में परिवर्तन होता हुआ दिखाई देता है। आझादी के बाद की दलित पीढ़ी अनेक क्षेत्रों में प्रवेश कर रही है, लेकिन कई शिक्षित दलित सामाजिक प्रतिष्ठा के दंभ में अपने ही लोगों से दूर जाकर सवर्ण मानसिकता का प्रमाण देते हैं। शहर तथा ग्रामीण क्षेत्र में जातीयता की भावना पूर्णत: नष्ट नहीं हुअी है। देश का उच्चस्तरीय शिक्षा संस्थान आई.आई.टी.भी इससे अलग नहीं है। वहाँ जाति के कारण दलित छात्रों को दुख, दर्द, यातनाएँ सहनी पड़ती है।